चना का उकठा रोग एवं उसके बचाव

1. **प्रिया देवी मौर्या**
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उ० प्र०
2. **नैमिष कुमार**
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उ० प्र०
3. **अंकिता**
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उ० प्र०

Received: Nov, 2023; Accepted: Nov, 2023; Published: Jan, 2024

परिचय

चना (*सिसर एरेटीनम*) जिसे बंगाल चना भी कहा जाता है। यह स्वपरागत, वार्षिक प्रजाति है। चना लेगयूमीनोसी परिवार, उप परिवार पॅप्लिओलिओनेसी और जनजाति सिसरिया से संबंधित है। चने में वायुमंडलीय नाइट्रोजन को फिक्स करके मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने की क्षमता होती है। चना लोगों के लिए प्रोटीन का एक अच्छा स्रोत है। चना प्रोटीन, उच्च वसा सोडियम और कम कोलेस्ट्रॉल होता है और घुलनशील और अघुलनशील फाइबर साथ ही विटामिन, सॉलिड कार्बोहाइड्रेट और खनिज विशेष रूप से कैल्शियम फास्फोरस और मैग्नीशियम दोनों का एक उत्कृष्ट स्रोत है। चने की खेती दो अलग-अलग प्रकार की होती है: देसी और काबुली

देसी (माइक्रास्फार्मा) चने के तनों पर गुलाबी फूल होते हैं और काबुली प्रकार के चने में सफेद फूल होते हैं काबुली चने के बीज समशीतोष्ण क्षेत्र में उगाए जाते हैं तथा देसी प्रकार के बीच अर्धशुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में उगाए जाते है।

चने का मुख्य उत्पादक भारत, ऑस्ट्रेलिया और पाकिस्तान है जो वैश्विक उत्पादों में क्रमशः 67.32, 6.19 और 5.72 प्रतिशत का योगदान है। पिछले कुछ दशकों के दौरान चने के उत्पादन में महत्वपूर्ण कमी दर्ज की गई इसके पीछे कई जैविक व अजैविक तनाव के प्रति किस्म की संवेदनशीलता है। जो उपज पर प्रतिकूल प्रकार डालते हैं जिनमें मुख्य रूप से कवक रोग (उकठा तथा एस्कोकाइटा रोग), फली छेदक कीट और

e-ISSN No. 2583-0937

शुष्क एवं ठंडा मौसम अधिक प्रभावी होते है। उकठा रोग की खोज फ्यूसरियम ऑक्सिस्पोरम नामक कवक के कारण होता है। सर्वप्रथम 1918 में बटलर के द्वारा की गई। यह बीमारी

लक्षण

चने का उकठा रोग एक मोनोसाइक्लिक रोग है। यह रोग किसी भी अवस्था में फसल को प्रभावित कर सकता है। अंकुरण अवस्था में बुवाई के तीन से चार सप्ताह बाद पूरे अंकुर गिर जाते हैं और तने फीकी हरी पत्तियां के साथ जमीन पर गिर जाते हैं तनों के आंतरिक ऊतकों पर गहरा मलीनीकरण दिखाई देता है। वयस्क अवस्था में डंठल, पत्रक तथा पूरा पौधा गिर जाता है।

रोग प्रसार की विधि

यह रोगजनक संक्रमित बीज, मिट्टी, पौधों के अवशेषों, पानी के बहाव तथा बारिश के छीटों से फैलता है। यह कवक कई वर्षों तक मिट्टी में जीवित रहता है।

जीवन चक्र

रोगजनक का जीवन चक्र दो चरणों का होता है। परजीवी चरण और मृतोपजीवी चरण। परजीवी चरण में कवक दारारो, घावो या जड़ शाखों के माध्यम से पौधों में प्रवेश कर आक्रमण करता है। रोगजनक की पौधों में स्थापना के बाद हाइड्रोलिटिक एंजाइम बढ़ जाता है तथा कवकजाल जड़ों द्वारा अपनिवेशित होकर धीरे-धीरे संवाहिनी धारा में प्रवेश करता है और पूरे पौधे में वितरित हो जाती है। कवकजाल जड़ों के कोरटेक्स के माध्यम से जाइलम में अन्त: कोशिकाओं के रूप में आगे बढ़ता है और विशेष रूप से जाइलम वाहिकाओं में रहता है जहां रस का प्रवाह रुक जाता है। अंत में पौधा अपनी क्षमता से अधिक वाष्पोत्सर्जन करता है जिससे रंध्र बंद हो जाते हैं, पत्तियां मुरझा जाती है और पौधा मर जाता है। पौधा के मरने के बाद कवक ऊतको पर आक्रमण करता है, बीजाणु उत्पन्न करता है और दूसरे पौधों को लगातार संक्रमित करता रहता है।

प्रबंधन

- यह बाहरी बीमारी मिट्टी से उत्पन्न होती है इसीलिए रासायनिक नियंत्रण प्रभावित नहीं है। अतः इस बीमारी पर काबू पाने के लिए प्रतिरोधी किस्म जैसे श्वेता, PUSA-391 इत्यादि का उपयोग करना चाहिए।
- हमेशा रोग मुक्त बीजों का ही उपयोग करना चाहिए।
- अलसी के साथ चने की अंतर फसल या मिश्रित फसल उगाने से रोग की घटनाओं में काफी कमी आती है।
- बीमारी को कम करने के लिए गर्मियों में गहरी जुताई देनी चाहिए तथा पौधों के मलबा को हटा देना चाहिए।
- तापमान अधिक होने पर बुवाई करने से बचे।
- ज्वार के साथ 6 वर्षीय फसल चक्र अपनाये।
- बीज उपचार और मिट्टी संशोधन के लिए ट्राइकोडर्मा हर्ज़ियानम अथवा ट्राइकोडर्मा विरिडी (4 ग्राम प्रति किलो बीज) आदि कवक या स्यूडोमोनास फ्लोरोसेंस बैक्टीरिया (10 ग्राम प्रति किलो बीज) से उपयोग करना चाहिए।

कवकनाशी जैसे बाविस्टिन @ 2 ग्राम प्रति किलो बीज अथवा कार्बेन्डाजिम अथवा थिरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बीज प्रयोग करना चाहिए।

e-ISSN No. 2583-0937